राजा निरबंसिया

हिन्दी ADDA

कमलेश्वर

राजा निरबंसिया

"एक राजा निरबंसिया थे," मां कहानी सुनाया करती थीं। उनके आसपास ही चार-पांच बच्चे अपनी मुठ्ठियों में फूल दबाए कहानी समाप्त होने पर गौरों पर चढाने के लिए उत्सुक-से बैठ जाते थे। आटे का सुन्दर-सा चौक पुरा होता, उसी चौक पर मिट्टी की छः गौरें रखी जातीं, जिनमें से ऊपरवाली के बिन्दिया और सिन्दूर लगता, बाकी पांचों नीचे दबी पूजा ग्रहण करती रहतीं। एक ओर दीपक की बाती स्थिर-सी जलती रहती और मंगल-घट रखा रहता, जिस पर रोली से सथिया बनाया जाता। सभी बैठे बच्चों के मुख पर फूल चढाने की उतावली की जगह कहानी सुनने की सहज स्थिरता उभर आती।

"एक राजा निरबंसिया थे," मां सुनाया करती थीं, "उनके राज में बडी ख़ुशहाली थी। सब वरण के लोग अपना-अपना काम-काज देखते थे। कोई दुखी नहीं दिखाई पडता था। राजा के एक लक्ष्मी-सी रानी थी, चंद्रमा-सी सुन्दर और राजा को बहुत प्यारी। राजा राज-काज देखते और सुख-से रानी के महल में रहते। "

मेरे सामने मेरे ख्यालों का राजा था, राजा जगपती! तब जगपती से मेरी दांतकाटी दोस्ती थी, दोनों मिडिल स्कूल में पढने जाते। दोनों एक-से घर के थे, इसलिए बराबरी की निभती थी। मैं मैट्रिक पास करके एक स्कूल में नौकर हो गया और जगपती कस्बे के ही वकील के यहां मुहर्रिर। जिस साल जगपती मुहर्रिर हुआ, उसी वर्ष पास के गांव में उसकी शादी हुई, पर ऐसी हुई कि लोगों ने तमाशा बना देना चाहा। लडक़ीवालों का कुछ विश्वास था कि शादी के बाद लडक़ी की विदा नहीं होगी।

ब्याह हो जाएगा और सातवीं भांवर तब पडेग़ी, जब पहली विदा की सायत होगी और तभी लडक़ी अपनी ससुराल जाएगी। जगपती की पत्नी थोडी-बहुत पढी-लिखी थी, पर घर की लीक को कौन मेटे! बारात बिना बहू के वापस आ गई और लडक़ेवालों ने तय कर लिया कि अब जगपती की शादी कहीं और कर दी जाएगी, चाहें कानी-लूली से हो, पर वह लडक़ी अब घर में नहीं आएगी। लेकिन साल खतम होते-होते सब ठीक-ठाक हो गया। लडक़ीवालों ने माफी मांग ली और जगपती की पत्नी अपनी ससुराल आ गई।

जगपती को जैसे सब कुछ मिल गया और सास ने बहू की बलाइयां लेकर घर की सब चाबियां सौंप दीं, गृहस्थी का ढंग-बार समझा दिया। जगपती की मां न जाने कब से आस लगाए बैठीं थीं। उन्होंने आराम की सांस ली। पूजा-पाठ में समय कटने लगा, दोपहरियां दूसरे घरों के आंगन में बीतने लगीं। पर सांस का रोग था उन्हें, सो एक दिन उन्होंने अपनी अन्तिम घडियां गिनते हुए चन्दा को पास बुलाकर समझाया था - "बेटा, जगपती बडे लाड-प्यार का पला है। जब से तुम्हारे ससुर नहीं रहे तब से इसके छोटे-छोटे हठ को पूरा करती रही हूं , अब तुम ध्यान रखना।" फिर रुककर उन्होंने कहा था, "जगपती किसी लायक हुआ है, तो रिश्तेदारों की आंखों में करकने लगा है। तुम्हारे बाप ने ब्याह के वक्त नादानी की, जो तुम्हें विदा नहीं किया। मेरे दुश्मन देवर-जेठों को मौका मिल गया। तूमार खडा कर दिया कि अब विदा करवाना नाक कटवाना है। जगपती का ब्याह क्या हुआ, उन लोगों की छाती पर सांप लोट गया। सोचा, घर की इज्जत रखने की आड लेकर रंग में भंग कर दें। अब बेटा, इस घर की लाज तुम्हारी लाज है। आज को तुम्हारे ससुर होते, तो भला...." कहते कहते मां की

https://www.hindiadda.com/raja-nirbansiya/

आंखों में आंसू आ गए, और वे जगपती की देखभाल उसे सौंपकर सदा के लिए मौन हो गई थीं।

एक अरमान उनके साथ ही चला गया कि जगपती की सन्तान को, चार बरस इन्तजार करने के बाद भी वे गोद में न खिला पाईं। और चन्दा ने मन में सब्र कर लिया था, यही सोचकर कि कुल-देवता का अंश तो उसे जीवन-भर पूजने को मिल गया था। घर में चारों तरफ जैसे उदारता बिखरी रहती, अपनापा बरसता रहता। उसे लगता, जैसे घर की अंधेरी, एकान्त कोठरियों में यह शान्त शीतलता है जो उसे भरमा लेती है। घर की सब कुण्डियों की खनक उसके कानों में बस गई थी, हर दरवाजे की चरमराहट पहचान बन गई थीं।

"एक रोज राजा आखेट को गए," मां सुनाती थीं, "राजा आखेट को जाते थे, तो सातवें रोज ज़रूर महल में लौट आते थे। पर उस दफा जब गए, तो सातवां दिन निकल गया, पर राजा नहीं लौटे। रानी को बडी चिन्ता हुई। रानी एक मन्त्री को साथ लेकर खोज में निकलीं ।"

और इसी बीच जगपती को रिश्तेदारी की एक शादी में जाना पडा। उसके दूर रिश्ते के भाई दयाराम की शादी थी। कह गया था कि दसवें दिन जरूर वापस आ जाएगा। पर छठे दिन ही खबर मिली कि बारात घर लौटने पर दयाराम के घर डाका पड ग़या। किसी मुखबिर ने सारी खबरें पहुंचा दी थीं कि लडक़ीवालों ने दयाराम का घर सोने-चांदी से पाट दिया है,आखिर पुश्तैनी जमींदार की इकलौती लडक़ी थी। घर आए मेहमान लगभग विदा हो चुके थे। दूसरे रोज जगपती भी चलनेवाला था, पर उसी रात डाका पडा। जवान आदमी, भला खून मानता है! डाकेवालों ने जब बन्दूकें चलाई, तो सबकी घिग्घी बंध गई पर जगपती और दयाराम ने छाती ठोककर लाठियां उठा लीं। घर में कोहराम मच गया फ़िर सन्नाटा छा गया। डाकेवाले बराबर गोलियां दाग रहे थे। बाहर का दरवाजा टूट चुका था। पर जगपती ने हिम्मत बढाते हुए हांक लगाई, "ये हवाई बन्दूकें इन ठेल-पिलाई लाठियों का मुकाबला नहीं कर पाएंगी, जवानो।"

पर दरवाजे तड-तड टूटते रहे, और अन्त में एक गोली जगपती की जांघ को पार करती निकल गई, दूसरी उसकी जांघ के ऊपर कूल्हे में समा कर रह गई।

चन्दा रोती-कलपती और मनौतियां मानती जब वहां पहुँची, तो जगपती अस्पताल में था। दयाराम के थोडी चोट आई थी। उसे अस्पताल से छुट्टी मिल गई थीं। जगपती की देखभाल के लिए वहीं अस्पताल में मरीजों के रिश्तेदारों के लिए जो कोठरियां बनीं थीं, उन्हीं में चन्दा को रुकना पडा। कस्बे के अस्पताल से दयाराम का गांव चार कोस

पडता था। दूसरे-तीसरे वहां से आदमी आते-जाते रहते, जिस सामान की जरूरत होती, पहुंचा जाते।

पर धीरे-धीरे उन लोगों ने भी खबर लेना छोड दिया। एक दिन में ठीक होनेवाला घाव तो था नहीं। जांघ की हड्डी चटख गई थी और कूल्हे में ऑपरेशन से छः इंच गहरा घाव था।

कस्बे का अस्पताल था। कम्पाउण्डर ही मरीजों की देखभाल रखते। बडा डॉक्टर तो नाम के लिए था या कस्बे के बडे आदमियों के लिए। छोटे लोगों के लिए तो कम्पोटर साहब ही ईश्वर के अवतार थे। मरीजों की देखभाल करनेवाले रिश्तेदारों की खाने-पीने की मुश्किलों से लेकर मरीज की नब्ज तक संभालते थे। छोटी-सी इमारत में अस्पताल आबाद था। रोगियों को सिर्फ छः-सात खाटें थी। मरीजों के कमरे से लगा दवा बनाने का कमरा था, उसी में एक ओर एक आरामकुर्सी थी और एक नीची-सी मेज। उसी कुर्सी पर बडा डॉक्टर आकर कभी-कभार बैठता था, नहीं तो बचनसिंह कपाउण्डर ही जमे रहते। अस्पताल में या तो फौजदारी के शहीद आते या गिर-गिरा के हाथ-पैर तोड लेनेवाले एक-आध लोग। छठे-छमासे कोई औरत दिख गई तो दीख गई, जैसे उन्हें कभी रोग घेरता ही नहीं था। कभी कोई बीमार पडती तो घरवाले हाल बताके आठ-दस रोज क़ी दवा एक साथ ले जाते और फिर उसके जीने-मरने की खबर तक न मिलती।

उस दिन बचनसिंह जगपती के घाव की पट्टी बदलने आया। उसके आने में और पट्टी खोलने में कुछ ऐसी लापरवाही थी, जैसे गलत बंधी पगडी क़ो ठीक से बांधने के लिए खोल रहा हो। चन्दा उसकी कुर्सी के पास ही सांस रोके खडी थी। वह और रोगियों से बात करता जा रहा था। इधर मिनट-भर को देखता, फिर जैसे अभ्यस्त-से उसके हाथ अपना काम करने लगते। पट्टी एक जगह खून से चिपक गई थी, जगपती बुरी तरह कराह उठा। चन्दा के मुंह से चीख निकल गई। बचनसिंह ने सतर्क होकर देखा तो चन्दा मुख में धोती का पल्ला खोंसे अपनी भयातुर आवाज दबाने की चेष्टा कर रही थी। जगपती एकबारगी मछली-सा तडपकर रह गया। बचनसिंह की उंगलियां थोडी-सी थरथराई कि उसकी बांह पर टप-से चन्दा का आंसू चू पडा।

बचनसिंह सिहर-सा गया और उसके हाथों की अभ्यस्त निठुराई को जैसे किसी मानवीय कोमलता ने धीरे-से छू दिया। आहों, कराहों, दर्द-भरी चीखों और चटखते शरीर के जिस वातावरण में रहते हुए भी वह बिल्कुल अलग रहता था, फोडों को पके आम-सा दबा देता था, खाल को आलू-सा छील देता था। उसके मन से जिस दर्द का

अहसास उठ गया था, वह उसे आज फिर हुआ और वह बच्चे की तरह फूंक-फूंककर पट्टी को नम करके खोलने लगा। चन्दा की ओर धीरे-से निगाह उठाकर देखते हुए फुसफुसाया, "च..च रोगी की हिम्मत टूट जाती है ऐसे।"

पर जैसे यह कहते-कहते उसका मन खुद अपनी बात से उचंट गया। यह बेपरवाही तो चीख और कराहों की एकरसता से उसे मिली थी, रोगी की हिम्मत बढाने की कर्तव्यनिष्ठा से नहीं। जब तक वह घाव की मरहम-पट्टी करता रहा, तब तक किन्हीं दो आंखों की करूणा उसे घेरे रही।

और हाथ धोते समय वह चन्दा की उन चूडियों से भरी कलाइयों को बेझिझक देखता रहा, जो अपनी खुशी उससे मांग रही थीं। चन्दा पानी डालती जा रही थी और बचनसिंह हाथ धोते-धोते उसकी कलाइयों, हथेलियों और पैरों को देखता जा रहा था। दवाखाने की ओर जाते हुए उसने चन्दा को हाथ के इशारे से बुलाकर कहा, "दिल छोटा मत करना जांघ का घाव तो दस रोज में भर जाएगा, कूल्हे का घाव कुछ दिन जरूर लेगा। अच्छी से अच्छी दवाई दूंगा। दवाइयां तो ऐसी हैं कि मुर्दे को चंगा कर दें। पर हमारे अस्पताल में नहीं आतीं, फिर भी.."

"तो किसी दूसरे अस्पताल से नहीं आ सकतीं वो दवाइयां?" चन्दा ने पूछा।

"आ तो सकती हैं, पर मरीज को अपना पैसा खरचना पडता है उनमें । "बचनसिंह ने कहा।

चन्दा चुप रह गई तो बचनसिंह के मुंह से अनायास ही निकल पडा, "किसी चीज क़ी जरूरत हो तो मुझे बताना। रही दवाइयां, सो कहीं न कहीं से इन्तजाम करके ला दूंगा। महकमे से मंगाएंगे, तो आते-अवाते महीनों लग जाएंगे। शहर के डॉक्टर से मंगवा दूंगा। ताकत की दवाइयों की बडी ज़रूरत है उन्हें। अच्छा, देखा जाएगा। " कहते-कहते वह रुक गया।

चन्दा से कृतज्ञता भरी नजरों से उसे देखा और उसे लगा जैसे आंधी में उडते पत्ते को कोई अटकाव मिल गया हो। आकर वह जगपती की खाट से लगकर बैठ गई। उसकी हथेली लेकर वह सहलाती रही। नाखूनों को अपने पोरों से दबाती रही।

धीरे-धीरे बाहर अंधेरा बढ चला। बचनसिंह तेल की एक लालटेन लाकर मरीज़ों के कमरे के एक कोने में रख गया। चन्दा ने जगपती की कलाई दबाते-दबाते धीरे से

कहा, "कम्पाउण्डर साहब कह रहे थे " और इतना कहकर वह जगपती का ध्यान आकृष्ट करने के लिए चुप हो गई।

"क्या कह रहे थे?" जगपती ने अनमने स्वर में बोला।

"कुछ ताकत की दवाइयां तुम्हारे लिए जरूरी हैं!"

"मैं जानता हूं।"

"पर.. "

"देखो चन्दा, चादर के बराबर ही पैर फैलाए जा सकते हैं। हमारी औकात इन दवाइयों की नहीं है।

"औकात आदमी की देखी जाती है कि पैसे की, तुम तो.."

"देखा जाएगा।"

"कम्पाउण्डर साहब इन्तजाम कर देंगे, उनसे कहूंगी मैं।"

"नहीं चन्दा, उधारखाते से मेरा इलाज नहीं होगा चाहे एक के चार दिन लग जाएं।"

"इसमें तो "

"तुम नहीं जानतीं, कर्ज क़ोढ क़ा रोग होता है, एक बार लगने से तन तो गलता ही है, मन भी रोगी हो जाता है।"

"लेकिन.."कहते-कहते वह रुक गई।

जगपती अपनी बात की टेक रखने के लिए दूसरी ओर मुंह घुमाकर लेटा रहा।

और तीसरे रोज जगपती के सिरहाने कई ताकत की दवाइयां रखी थीं, और चन्दा की ठहरने वाली कोठरी में उसके लेटने के लिए एक खाट भी पहुंच गई थी। चन्दा जब आई, तो जगपती के चेहरे पर मानसिक पीडा की असंख्य रेखाएं उभरी थीं, जैसे वह अपनी बीमारी से लडने के अलावा स्वयं अपनी आत्मा से भी लड रहा हो । चन्दा की नादानी और स्नेह से भी उलझ रहा हो और सबसे ऊपर सहायता करनेवाले की दया से जूझ रहा हो।

चन्दा ने देखा तो यह सब सह न पाई। उसके जी में आया कि कह दे, क्या आज तक तुमने कभी किसी से उधार पैसे नहीं लिए? पर वह तो खुद तुमने लिए थे और तुम्हें मेरे सामने स्वीकार नहीं करना पडा था। इसीलिए लेते झिझक नहीं लगी, पर आज मेरे सामने उसे स्वीकार करते तुम्हारा झूठा पौरूष तिलमिलाकर जाग पडा है। पर जगपती के मुख पर बिखरी हुई पीडा में जिस आदर्श की गहराई थी, वह चन्दा के मन में चोर की तरह घुस गई, और बडी स्वाभाविकता से उसने माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, "ये दवाइयां किसी की मेहरबानी नहीं हैं। मैंने हाथ का कडा बेचने को दे दिया था, उसी में आई हैं।"

"मुझसे पूछा तक नहीं और.." जगपती ने कहा और जैसे खुद मन की कमजोरी को दबा गया - कडा बेचने से तो अच्छा था कि बचनसिंह की दया ही ओढ ली जाती। और उसे हल्का-सा पछतावा भी था कि नाहक वह रौ में बडी-बडी बातें कह जाता है, ज्ञानियों की तरह सीख दे देता है।

और जब चन्दा अंधेरा होते उठकर अपनी कोठरी में सोने के लिए जाने को हुई, तो कहते-कहते यह बात दबा गई कि बचनसिंह ने उसके लिए एक खाट का इन्तजाम भी कर दिया है। कमरे से निकली, तो सीधी कोठरी में गई और हाथ का कडा लेकर सीधे दवाखाने की ओर चली गई, जहां बचनसिंह अकेला डॉक्टर की कुर्सी पर आराम से टांगें फैलाए लैम्प की पीली रोशनी में लेटा था। जगपती का व्यवहार चन्दा को लग गया था, और यह भी कि वह क्यों बचनसिंह का अहसान अभी से लाद ले, पति के लिए जेवर की कितनी औकात है। वह बेधडक-सी दवाखाने में घुस गई। दिन की पहचान के कारण उसे कमरे की मेज-कुर्सी और दवाओं की अलमारी की स्थिति का अनुमान था, वैसे कमरा अंधेरा ही पडा था, क्योंकि लैम्प की रोशनी केवल अपने वृत्त में अधिक प्रकाशवान होकर कोनों के अंधेरे को और भी घनीभूत कर रही थी। बचनसिंह ने चन्दा को घुसते ही पहचान लिया। वह उठकर खडा हो गया। चन्दा ने भीतर कदम तो रख दिया पर सहसा सहम गई, जैसे वह किसी अंधेरे कुएं में अपने-आप कूद पडी हो, ऐसा कुआं, जो निरन्तर पतला होता गया है और जिसमें पानी की गहराई पाताल की पर्तों तक चली गई हो, जिसमें पडकर वह नीचे धंसती चली जा रही हो, नीचे ..अंधेरा..एकान्त, घुटन..पाप!

बचनसिंह अवाक् ताकता रह गया और चन्दा ऐसे वापस लौट पडी, जैसे किसी काले पिशाच के पंजों से मुक्ति मिली हो। बचनसिंह के सामने क्षण-भर में सारी परिस्थिति कौंध गई और उसने वहीं से बहुत संयत आवाज में जबान को दबाते हुए जैसे वायु में स्पष्ट ध्वनित कर दिया - "चन्दा!" वह आवाज इतनी बे-आवाज थी और निरर्थक

होते हुए भी इतनी सार्थक थी कि उस खामोशी में अर्थ भर गया। चन्दा रुक गई। बचनसिंह उसके पास जाकर रुक गया।

सामने का घना पेड स्तब्ध खडा था, उसकी काली परछाई की परिधि जैसे एक बार फैलकर उन्हें अपने वृत्त में समेट लेती और दूसरे ही क्षण मुक्त कर देती। दवाखाने का लैम्प सहसा भभककर रुक गया और मरीजों के कमरे से एक कराह की आवाज दूर मैदान के छो तक जाकर डूब गई।

चन्दा ने वैसे ही नीचे ताकते हुए अपने को संयत करते हुए कहा, "यह कडा तुम्हें देने आई थी।"

"तो वापस क्यों चली जा रही थीं?"

चन्दा चुप। और दो क्षण रुककर उसने अपने हाथ का सोने का कडा धीरे-से उसकी ओर बढा दिया, जैसे देने का साहस न होते हुए भी यह काम आवश्यक था। बचनसिंह ने उसकी सारी काया को एक बार देखते हुए अपनी आंखें उसके सिर पर जमा दीं, उसके ऊपर पडे कपडे क़े पार नरम चिकनाई से भरे लम्बे-लम्बे बाल थे, जिनकी भाप-सी महक फैलती जा रही थी। वह धीरे-धीरे से बोला, "लाओ।"

चन्दा ने कडा उसकी ओर बढा दिया। कडा हाथ में लेकर वह बोला, "सुनो।"

चन्दा ने प्रश्न-भरी नजरें उसकी ओर उठा दी। उनमें झांकते हुए, अपने हाथ से उसकी कलाई पकडते हुए उसने वह कडा उसकी कलाई में पहना दिया। चन्दा चुपचाप कोठरी की ओर चल दी और बचनसिंह दवाखाने की ओर।

कालिख बुरी तरह बढ ग़ई थी और सामने खडे पेड क़ी काली परछाई गहरी पड ग़ई थी। दोनों लौट गए थे। पर जैसे उस कालिख में कुछ रह गया था, छूट गया था। दवाखाने का लैम्प जो जलते-जलते एक बार भभका था, उसमें तेल न रह जाने के कारण बत्ती की लौ बीच से फट गई थी, उसके ऊपर धुएं की लकीरें बल खाती, सांप की तरह अंधेरे में विलीन हो जाती थीं।

सुबह जब चन्दा जगपती के पास पहुंची और बिस्तर ठीक करने लगी तो जगपती को लगा कि चन्दा बहुत उदास थी। क्षण-क्षण में चन्दा के मुख पर अनगिनत भाव आ-जा रहे थे, जिनमें असमंजस था, पीडा थी और निरीहता थी। कोई अदृश्य पाप कर चुकने के बाद हृदय की गहराई से किए गए पश्चाताप जैसी धूमिल चमक?

"रानी मन्त्री के साथ जब निराश होकर लौटीं, तो देखा, राजा महल में उपस्थित थे। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।" मां सुनाया करती थीं, "पर राजा को रानी का इस तरह मन्त्री के साथ जाना अच्छा नहीं लगा। रानी ने राजा को समझाया कि वह तो केवल राजा के प्रति अटूट प्रेम के कारण अपने को न रोक सकी। राजा-रानी एक-दूसरे को बहुत चाहते थे। दोनों के दिलो में एक बात शूल-सी गडती रहती कि उनके कोई सन्तान न थी। राजवंश का दीपक बुझने जा रहा था। सन्तान के अभाव में उनका लोक-परलोक बिगडा जा रहा था और कुल की मर्यादा नष्ट होने की शंका बढती जा रही थी।"

दूसरे दिन बचनसिंह ने मरीजों की मरहम-पट्टी करते वक्त बताया था कि उसका तबादला मैनपुरी के सदर अस्पताल में हो गया है और वह परसों यहां से चला जाएगा। जगपती ने सुना, तो उसे भला ही लगा। आए दिन रोग घेरे रहते हैं, बचनसिंह उसके शहर के अस्पताल में पहुंचा जा रहा है, तो कुछ मदद मिलती ही रहेगी। आखिर वह ठीक तो होगा ही और फिर मैनपुरी के सिवा कहां जाएगा? पर दूसरे ही क्षण उसका दिल अकथ भारीपन से भर गया। पता नहीं क्यों, चन्दा के अस्तित्व का ध्यान आते ही उसे इस सूचना में कुछ ऐसे नुकीले कांटे दिखाई देने लगे, जो उसके शरीर में किसी भी समय चुभ सकते थे, जरा-सा बेखबर होने पर बींध सकते थे। और तब उसके सामने आदमी के अधिकार की लक्ष्मण-रेखाएं धुएं की लकीर की तरह कांपकर मिटने लगीं और मन में छुपे सन्देह के राक्षस बाना बदल योगी के रूप में घूमने लगे।

और पन्द्रह-बीस रोज बाद जब जगपती की हालत सुधर गई, तो चन्दा उसे लेकर घर लौट आई। जगपती चलने-फिरने लायक हो गया था। घर का ताला जब खोला, तब रात झुक आई थी। और फिर उनकी गली में तो शाम से ही अंधेरा झरना शुरू हो जाता था। पर गली में आते ही उन्हें लगा, जैसे कि वनवास काटकर राजधानी लौटे हों। नुक्कड पर ही जमुना सुनार की कोठरी में सुरही फिंक रही थी, जिसके दराजदार दरवाजों से लालटेन की रोशनी की लकीर झांक रही थी और कच्ची तम्बाकू का धुंआ रूंधी गली के मुहाने पर बुरी तरह भर गया था। सामने ही मुंशीजी अपनी जिंगला खटिया के गड्ढे में, कुप्पी के मध्दिम प्रकाश में खसरा-खतौनी बिछाए मीजान लगाने में मशगूल थे। जब जगपती के घर का दरवाजा खडक़ा, तो अंधेरे में उसकी चाची ने अपने जंगले से देखा और वहीं से बैठे-बैठे अपने घर के भीतर ऐलान कर दिया - "राजा निरबंसिया अस्पताल से लौट आए क़ुलमा भी आई हैं।"

ये शब्द सुनकर घर के अंधेरे बरोठे में घुसते ही जगपती हांफकर बैठ गया, झुंझलाकर चन्दा से बोला, "अंधेरे में क्या मेरे हाथ-पैर तुडवाओगी? भीतर जाकर लालटेन जला लाओ न।"

"तेल नहीं होगा, इस वक्त जरा ऐसे ही काम.. "

"तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा । न तेल न.." कहते-कहते जगपती एकदम चुप रह गया। और चन्दा को लगा कि आज पहली बार जगपती ने उसके व्यर्थ मातृत्व पर इतनी गहरी चोट कर दी, जिसकी गहराई की उसने कभी कल्पना नहीं की थी। दोनों खामोश, बिना एक बात किए अन्दर चले गए।

रात के बढते सन्नाटे में दोनों के सामने दो बातें थीं। जगपती के कानों में जैसे कोई व्यंग्य से कह रहा था - राजा निरबंसिया अस्पताल से आ गए!

और चन्दा के दिल में यह बात चुभ रही थी - तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा। और सिसकती-सिसकती चन्दा न जाने कब सो गई। पर जगपती की आंखों में नींद न आई। खाट पर पडे-पडे उसके चारों ओर एक मोहक, भयावना-सा जाल फैल गया। लेटे-लेटे उसे लगा, जैसे उसका स्वयं का आकार बहुत क्षीण होता-होता बिन्दु-सा रह गया, पर बिन्दु के हाथ थे, पैर थे और दिल की धडकन भी। कोठरी का घुटा-घुटा-सा अंधियारा, मटमैली दीवारें और गहन गुफाओं-सी अलमारियां, जिनमें से बार-बार झांककर देखता था और वह सिहए उठता था फ़िर जैसे सब कुछ तब्दील हो गया हो। उसे लगा कि उसका आकार बढता जा रहा है, बढता जा रहा है। वह मनुष्य हुआ, लम्बा-तगडा-तन्दुरूस्त पुरूष हुआ, उसकी शिराओं में कुछ फूट पडने के लिए व्याकुलता से खौल उठा। उसके हाथ शरीर के अनुपात से बहुत बडे, ड़रावने और भयानक हो गए, उनके लम्बे-लम्बे नाखून निकल आए वह राक्षस हुआ, दैत्य हुआ..आदिम, बर्बर!

और बडी तेजी से सारा कमरा एकबारगी चक्कर काट गया। फिर सब धीरे-धीरे स्थिर होने लगा और उसकी सांसें ठीक होती जान पडीं। फ़िर जैसे बहुत कोशिश करने पर घिग्घी बंध जाने के बाद उसकी आवाज फ़ूटी, "चन्दा!"

चन्दा की नरम सांसों की हल्की सरसराहट कमरे में जान डालने लगी। जगपती अपनी पाटी का सहारा लेकर झुका। कांपते पैर उसने जमीन पर रखे और चन्दा की खाट के पाए से सिर टिकाकर बैठ गया। उसे लगा, जैसे चन्दा की इन सांसों की आवाज में जीवन का संगीत गूंज रहा है। वह उठा और चन्दा के मुख पर झुक गया। उस अंधेरे में

आंखें गडाए-गडाए जैसे बहुत देर बाद स्वयं चन्दा के मुख पर आभा फूटकर अपने-आप बिखरने लगी। उसके नक्श उज्ज्वल हो उठे और जगपती की आंखों को ज्योति मिल गई। वह मुग्ध-सा ताकता रहा।

चन्दा के बिखरे बाल, जिनमें हाल के जन्मे बच्चे के गभुआरे बालों की-सी महक, दूध की कचाइंध, शरीर के रस की-सी मिठास और स्नेह-सी चिकनाहट और वह माथा जिस पर बालों के पास तमाम छोटे-छोटे, नरम-नरम-नरम-से रोएं- रेशम से और उस पर कभी लगाई गई सेंदुर की बिन्दी का हल्का मिटा हुआ-सा आभास । नन्हें-नन्हें निर्द्वन्द्व सोए पलक! और उनकी मासूम-सी कांटों की तरह बरौनियां और सांस में घुलकर आती हुई वह आत्मा की निष्कपट आवाज क़ी लय फ़ूल की पंखुरी-से पतले-पतले ओंठ, उन पर पडी अछूती रेखाएं, जिनमें सिर्फ दूध-सी महक!

उसकी आंखों के सामने ममता-सी छा गई, केवल ममता, और उसके मुख से अस्फुट शब्द निकल गया, "बच्ची!"

डरते-डरते उसके बालों की एक लट को बडे ज़तन से उसने हथेली पर रखा और उंगली से उस पर जैसे लकीरें खींचने लगा। उसे लगा, जैसे कोई शिशु उसके अंक में आने के लिए छटपटाकर, निराश होकर सो गया हो। उसने दोनों हथेलियों को पसारकर उसके सिर को अपनी सीमा में भर लेना चाहा कि कोई कठोर चीज उसकी उंगलियों से टकराई। वह जैसे होश में आया।

बडे सहारे से उसने चन्दा के सिर के नीचे टटोला। एक रूमाल में बंधा कुछ उसके हाथ में आ गया। अपने को संयत करता वह वहीं जमीन पर बैठ गया, उसी अन्धेरे में उस रूमाल को खोला, तो जैसे सांप सूंघ गया, चन्दा के हाथों के दोनों सोने के कडे उसमें लिपटे थे!

और तब उसके सामने सब सृष्टि धीरे-धीरे टुकडे-टुकडे होकर बिखरने लगी। ये कडे तो चन्दा बेचकर उसका इलाज कर रही थी। वे सब दवाइयां और ताकत के टॉनिक,उसने तो कहा था, ये दवाइयां किसी की मेहरबानी नहीं हैं, मैंने हाथ के कडे बेचने को दे दिए थे पर उसका गला बुरी तरह सूख गया। जबान जैसे तालु से चिपककर रह गई। उसने चाहा कि चन्दा को झकाझोरकर उठाए, पर शरीर की शक्ति बह-सी गई थी, रक्त पानी हो गया था। थोडा संयत हुआ, उसने वे कडे उसी रूमाल में लपेटकर उसकी खाट के कोने पर रख दिए और बडी मुश्किल से अपनी खाट की पाटी पकडकर लुढक गया। चन्दा झूठ बोली! पर क्यों? कडे आज तक छुपाए रही। उसने इतना बडा दुराव क्यों किया? आखिर क्यों? किसलिए? और जगपती का दिल भारी हो

गया। उसे फिर लगा कि उसका शरीर सिमटता जा रहा है और वह एक सींक का बना ढांचा रह गया नितान्त हल्का, तिनके-सा, हवा में उडकर भटकने वाले तिनके-सा।

उस रात के बाद रोज जगपती सोचता रहा कि चन्दा से कडे मांगकर बेच ले और कोई छोटा-मोटा कारोबार ही शुरू कर दे, क्योंकि नौकरी छूट चुकी थी। इतने दिन की गैरहाजिरी के बाद वकील साहब ने दूसरा मुहर्रिर रख लिया था। वह रोज यही सोचता पर जब चन्दा सामने आती, तो न जाने कैसी असहाय-सी उसकी अवस्था हो जाती। उसे लगता, जैसे कडे मांगकर वह चन्दा से पत्नीत्व का पद भी छीन लेगा। मातृत्व तो भगवान ने छीन ही लिया। वह सोचता आखिर चन्दा क्या रह जाएगी? एक स्त्री से यदि पत्नीत्व और मातृत्व छीन लिया गया, तो उसके जीवन की सार्थकता ही क्या? चन्दा के साथ वह यह अन्याय कैसे करे? उससे दूसरी आंख की रोशनी कैसे मांग ले? फिर तो वह नितान्त अन्धी हो जाएगी और उन कडों कोमांगने के पीछे जिस इतिहास की आत्मा नंगी हो जाएगी, कैसे वह उस लज्जा को स्वयं ही उधारकर ढांपेगा?

और वह उन्हीं खयालों में डूबा सुबह से शाम तक इधर-उधर काम की टोह में घूमता रहता। किसी से उधार ले ले? पर किस सम्पत्ति पर? क्या है उसके पास, जिसके आधार पर कोई उसे कुछ देगा? और मुहल्ले के लोग जो एक-एक पाई पर जान देते हैं, कोई चीज ख़रीदते वक्त भाव में एक पैसा कम मिलने पर मीलों पैदल जाकर एक पैसा बचाते हैं, एक-एक पैसे की मसाले की पुडिया बंधवाकर ग्यारह मर्तबा पैसों का हिसाब जोडकर एकाध पैसा उधारकर, मिन्नतें करते सौदा घर लाते हैं; गली में कोई खोंचेवाला फंस गया, तो दो पैसे की चीज क़ो लड-झगडकर - चार दाने ज्यादा पाने की नीयत से दो जगह बंधवाते हैं। भाव के जरा-से फर्क पर घण्टों बहस करते हैं, शाम को सडी-ग़ली तरकारियों को किफायत के कारण लाते हैं, ऐसे लोगों से किस मुंह से मांगकर वह उनकी गरीबी के अहसास पर ठोकर लगाए! पर उस दिन शाम को जब वह घर पहुंचा, तो बरोठे में ही एक साइकिल रखी नजर आई। दिमाग पर बहुत जोर डालने के बाद भी वह आगन्तुक की कल्पना न कर पाया। भीतरवाले दरवाजे पर जब पहुंचा, तो सहसा हंसी की आवाज सुनकर ठिठक गया। उस हंसी में एक अजीब-सा उन्माद था। और उसके बाद चन्दा का स्वर - "अब आते ही होंगे, बैठिए न दो मिनट और! अपनी आंख से देख लीजिए और उन्हें समझाते जाइए कि अभी तन्दुरूस्ती इस लायक नहीं, जो दिन-दिन-भर घूमना बर्दाश्त कर सकें।"

"हां भई, कमजोरी इतनी जल्दी नहीं मिट सकती, खयाल नहीं करेंगे तो नुकसान उठाएंगे!" कोई पुरूष-स्वर था यह।

जगपती असमंजस में पड ग़या। वह एकदम भीतर घुस जाए? इसमें क्या हर्ज है? पर जब उसने पैर उठाए, तो वे बाहर जा रहे थे। बाहर बरोठे में साइकिल को पकडते ही उसे सूझ आई, वहीं से जैसे अनजान बनता बडे प्रयत्न से आवाज क़ो खोलता चिल्लाया, "अरे चन्दा! यह साइकिल किसकी है? कौन मेहरबान.."

चन्दा उसकी आवाज सुनकर कमरे से बाहर निकलकर जैसे खुश-खबरी सुना रही थी, "अपने कम्पाउण्डर साहब आए हैं। खोजते-खोजते आज घर का पता पाए हैं, तुम्हारे इन्तजार में बैठे हैं।"

"कौन बचनसिंह? अच्छा..अच्छा। वही तो मैं कहूं, भला कौन.." कहता जगपती पास पहुंचा, और बातों में इस तरह उलझ गया, जैसे सारी परिस्थिति उसने स्वीकार कर ली हो। बचनसिंह जब फिर आने की बात कहकर चला गया, तो चन्दा ने बहुत अपनेपन से जगपती के सामने बात शुरू की, "जाने कैसे-कैसे आदमी होते हैं । "

"क्यों, क्या हुआ? कैसे होते हैं आदमी?" जगपती ने पूछा।

"इतनी छोटी जान-पहचान में तुम मर्दों के घर में न रहते घुसकर बैठ सकते हो? तुम तो उल्टे पैरों लौट आओगे।" चन्दा कहकर जगपती के मुख पर कुछ इच्छित प्रतिक्रिया देख सकने के लिए गहरी निगाहों से ताकने लगी।

जगपती ने चन्दा की ओर ऐसे देखा, जैसे यह बात भी कहने की या पूछने की है! फिर बोला, "बचनसिंह अपनी तरह का आदमी है, अपनी तरह का अकेला।"

"होगा,पर" कहते-कहते चन्दा रुक गई।

"आडे वक्त काम आने वाला आदमी है, लेकिन उससे फायदा उठा सकना जितना आसान है उतना...मेरा मतलब है कि ज़िससे कुछ लिया जाएगा, उसे दिया भी जाएगा।" जगपती ने आंखें दीवार पर गडाते हुए कहा। और चन्दा उठकर चली गई।

उस दिन के बाद बचनसिंह लगभग रोज ही आने-जाने लगा। जगपती उसके साथ इधर-उधर घूमता भी रहता। बचनसिंह के साथ वह जब तक रहता, अजीब-सी घुटन उसके दिल को बांध लेती, और तभी जीवन की तमाम विषमताएं भी उसकी निगाहों के सामने उभरने लगतीं, आखिर वह स्वयं एक आदमी है,बेकार.. यह माना कि उसके सामने पेट पालने की कोई इतनी विकराल समस्या नहीं, वह भूखों नहीं मर रहा है, जाडे में कांप नहीं रहा है, पर उसके दो हाथ-पैर हैं,शरीर का पिंजरा है, जो कुछ मांगता है,कुछ! और वह सोचता, यह कुछ क्या है? सुख? शायद हां, शायद नहीं। वह तो दुःख

में भी जी सकने का आदी है, अभावों में जीवित रह सकने वाला आश्चर्यजनक कीडा है। तो फिर वासना? शायद हां, शायद नहीं। चन्दा का शरीर लेकर उसने उस क्षणिकता को भी देखा है। तो फिर धन...शायद हां, शायद नहीं। उसने धन के लिए अपने को खपाया है। पर वह भी तो उस अदृश्य प्यास को बुझा नहीं पाया। तो फिर? तो फिर क्या? वह कुछ क्या है, जो उसकी आत्मा में नासूर-सा रिसता रहता है, अपना उपचार मांगता है? शायद काम! हां, यही, बिल्कुल यही, जो उसके जीवन की घडियों को निपट सूना न छोडे, ज़िसमें वह अपनी शक्ति लगा सके, अपना मन डुबो सके, अपने को सार्थक अनुभव कर सके, चाहे उसमें सुख हो या दुख, अरक्षा हो या सुरक्षा, शोषण हो या पोषण..उसे सिर्फ काम चाहिए! करने के लिए कुछ चाहिए। यही तो उसकी प्रकृत आवश्यकता है, पहली और आखिरी मांग है, क्योंकि वह उस घर में नहीं पैदा हुआ, जहां सिर्फ जबान हिलाकर शासन करनेवाले होते हैं। वह उस घर में भी नहीं पैदा हुआ, जहां सिर्फ मांगकर जीनेवाले होते हैं। वह उस घर का है, जो सिर्फ काम करना जानता है, काम ही जिसकी आस है। सिर्फ वह काम चाहता है, काम।

और एक दिन उसकी काम-धाम की समस्या भी हल हो गई। तालाब वाले ऊंचे मैदान के दक्षिण ओर जगपती की लकडी क़ी टाल खुल गई। बोर्ड् तक टंग गया। टाल की जमीन पर लक्ष्मी-पूजन भी हो गया और हवन भी हुआ। लकडी क़ो कोई कमी नहीं थी। गांव से आनेवाली गाडियों को, इस कारोबार में पैरे हुए आदमियों की मदद से मोल-तोल करवा के वहां गिरवा दिया गया। गांठें एक ओर रखी गईं, चैलों का चट्टा करीने से लग गया और गुद्दे चीरने के लिए डाल दिए गए। दो-तीन गाडियों का सौदा करके टाल चालू कर दी गई। भविष्य में स्वयं पेड ख़रीदकर कटाने का तय किया गया। बडी-बडी स्क़ीमें बनीं कि किस तरह जलाने की लकडी से बढाते-बढाते एक दिन इमारती लकडी क़ी कोठी बनेगी। चीरने की नई मशीन लगेगी। कारबार बढ ज़ाने पर बचनसिंह भी नौकरी छोडकर उसी में लग जाएगा। और उसने महसूस किया कि वह काम में लग गया है, अब चौबीसों घण्टे उसके सामने काम है,उसके समय का उपयोग है। दिन-भर में वह एक घण्टे के लिए किसी का मित्र हो सकता है, कुछ देर के लिए वह पति हो सकता है, पर बाकी समय? दिन और रात के बाकी घण्टे,उन घण्टों के अभाव को सिर्फ उसका अपना काम ही भर सकता है और अब वह कामदार था

वह कामदार तो था, लेकिन जब टाल की उस ऊंची जमीन पर पडे छप्पर के नीचे तखत पर वह गल्ला रखकर बैठता, सामने लगे लकडियों के ढेर, कटे हुए पेड क़े तने, जडों को लुढक़ा हुआ देखता, तो एक निरीहता बरबस उसके दिल को बांधने लगती। उसे लगता, एक व्यर्थ पिशाच का शरीर टुकडे-टुकडे करके उसके सामने डाल दिया

गया है।फिर इन पर कुल्हाडी चलेगी और इनके रेशे-रेशे अलग हो जाएंगे और तब इनकी ठठरियों को सुखाकर किसी पैसेवाले के हाथ तक पर तौलकर बेच दिया जाएगा। और तब उसकी निगाहें सामने खडे ताड पर अटक जातीं, जिसके बडे-बडे पत्तों पर सुर्ख गर्दनवाले गिद्‌ध पर फडफ़डाकर देर तक खामोश बैठे रहते। ताड क़ा काला गडरेदार तना और उसके सामने ठहरी हुई वायु में निस्सहाय कांपती, भारहीन नीम की पत्तियां चकराती झडती रहतीं धूल-भरी धरती पर लकडी क़ी गाडियोंके पहियों की पडी हुई लीक धुंधली-सी चमक उठती और बगलवाले मूंगफल्ली के पेंच की एकरस खरखराती आवाज क़ानों में भरने लगती। बगलवाली कच्ची पगडण्डी से कोई गुजरकर, टीले के ढलान से तालाब की निचाई में उतर जाता, जिसके गंदले पानी में कूडा तैरता रहता और सूअर कीचड में मुंह डालकर उस कूडे क़ो रौंदते दोपहर सिमटती और शाम की धुन्ध छाने लगती, तो वह लालटेन जलाकर छप्पर के खम्भे की कील में टांग देता और उसके थोडी ही देर बाद अस्पतालवाली सडक से बचनसिंह एक काले धब्बे की तरह आता दिखाई पडता। गहरे पडते अन्धेरे में उसका आकार धीरे-धीरे बढता जाता और जगपती के सामने जब वह आकर खडा होता, तो वह उसे बहुत विशाल-सा लगने लगता, जिसके सामने उसे अपना अस्तित्व डूबता महसूस होता।

एक-आध बिक्री की बातें होतीं और तब दोनों घर की ओर चल देते। घर पहुंचकर बचनसिंह कुछ देर जरूर रुकता, बैठता, इधर-उधर की बातें करता। कभी मौका पड ज़ाता, तो जगपती और बचनसिंह की थाली भी साथ लग जाती। चन्दा सामने बैठकर दोनों को खिलाती।

बचनसिंह बोलता जाता, "क्या तरकारी बनी है। मसाला ऐसा पडा है कि उसकी भी बहार है और तरकारी का स्वाद भी न मरा। होटलों में या तो मसाला ही मसाला रहेगा या सिर्फ तरकारी ही तरकारी। वाह! वाह! क्या बात है अन्दाज की!"

और चन्दा बीच-बीच में टोककर बोलती जाती, "इन्हें तो जब तक दाल में प्याज का भुना घी न मिले, तब तक पेट ही नहीं भरता।"

या - "सिरका अगर इन्हें मिल जाए, तो समझो, सब कुछ मिल गया। पहले मुझे सिरका न जाने कैसा लगता था, पर अब ऐसा जबान पर चढा है कि " या - "इन्हें कागज-सी पतली रोटी पसन्द ही नहीं आती। अब मुझसे कोई पतली रोटी बनाने को कहे, तो बनती ही नहीं, आदत पड ग़ई है, और फिर मन ही नहीं करता.. " पर चन्दा की आंखें बचनसिंह की थाली पर ही जमीं रहतीं। रोटी निबटी, तो रोटी परोस दी, दाल खत्म नहीं हुई, तो भी एक चमचा और परोस दी। और जगपती सिर झुकाए खाता

रहता। सिर्फ एक गिलास पानी मांगता और चन्दा चौंककर पानी देने से पहले कहती, "अरे तुमने तो कुछ लिया भी नहीं!" कहते-कहते वह पानी दे देती और तब उसके दिल पर गहरी-सी चोट लगती, न जाने क्यों वह खामोशी की चोट उसे बडी पीडा दे जाती पर वह अपने को समझा लेती, कोई मेहमान तो नहीं हैं मांग सकते थे। भूख नहीं होगी।

जगपती खाना खाकर टाल पर लेटने चला जाता, क्योंकि अभी तक कोई चौकीदार नहीं मिला था। छप्पर के नीचे तख्त पर जब वह लेटता, तो अनायास ही उसका दिल भर-भर आता। पता नहीं कौन-कोन से दर्द एक-दूसरे से मिलकर तरह-तरह की टीस, चटख और ऐंठन पैदा करने लगते। कोई एक रग दुखती तो वह सहलाता भी, जब सभी नसें चटखती हों तो कहां-कहां राहत का अकेला हाथ सहलाए!

लेटे-लेटे उसकी निगाह ताड क़े उस ओर बनी पुख्ता कब्र पर जम जाती, जिसके सिराहने कंटीला बबूल का एकाकी पेड सुन्न-सा खडा रहता। जिस कब्र पर एक पर्दानशीन औरत बडे लिहाज से आकर सवेरे-सवेरे बेला और चमेली के फूल चढा जाती, घूम-घूमकर उसके फेरे लेती और माथा टेककर कुछ कदम उदास-उदास-सी चलकर एकदम तेजी से मुडकर बिसातियों के मुहल्ले में खो जाती। शाम होते फिर आती। एक दीया बारती और अगर की बत्तियां जलाती, फिर मुडते हुए ओढनी का पल्ला कन्धों पर डालती, तो दीये की लौ कांपती, कभी कांपकर बुझ जाती, पर उसके कदम बढ चुके होते, पहले धीमे, थके, उदास-से और फिर तेज सधे सामान्य-से। और वह फिर उसी मुहल्ले में खो जाती और तब रात की तनहाइयों में बबूल के कांटों के बीच, उस सांय-सांय करते ऊंचे-नीचे मैदान में जैसे उस कब्र से कोई रूह निकलकर निपट अकेली भटकती रहती।

तभी ताड पर बैठे सुर्ख गर्दनवाले गिध्द मनहूस-सी आवाज में किलबिला उठते और ताड क़े पत्ते भयानकता से खडबडा उठते। जगपती का बदन कांप जाता और वह भटकती रूह जिन्दा रह सकने के लिए जैसे कब्र की इंटों में, बबूल के साया-तले दुबक जाती। जगपती अपनी टांगों को पेट से भींचकर, कम्बल से मुंह छुपा औंधा लेट जाता। तडक़े ही ठेके पर लगे लकडहारे लकडी चीरने आ जाते। तब जगपती कम्बल लपेट, घर की ओर चला जाता

"राजा रोज सवेरे टहलने जाते थे," मां सुनाया करती थीं, "एक दिन जैसे ही महल के बाहर निकलकर आए कि सडक पर झाडू लगानेवाली मेहतरानी उन्हें देखते ही अपना झाडूपंजा पटककर माथा पीटने लगी और कहने लगी, "हाय राम! आज राजा निरबंसिया का मुंह देखा है, न जाने रोटी भी नसीब होगी कि नहीं न जाने कौन-सी

विपत टूट पडे!" राजा को इतना दुःख हुआ कि उल्टे पैरों महल को लौट गए। मन्त्री को हुक्म दिया कि उस मेहतरानी का घर नाज से भर दें। और सब राजसी वस्त्र उतार, राजा उसी क्षण जंगल की ओर चले गए। उसी रात रानी को सपना हुआ कि कल की रात तेरी मनोकामना पूरी करनेवाली है। रानी बहुत पछता रही थी। पर फौरन ही रानी राजा को खोजती-खोजती उस सराय में पहुंच गई, जहां वह टिके हुए थे। रानी भेस बदलकर सेवा करने वाली भटियारिन बनकर राजा के पास रात में पहुंची। रातभर उनके साथ रही और सुबह राजा के जगने से पहले सराय छोड महल में लौट गई। राजा सुबह उठकर दूसरे देश की ओर चले गए। दो ही दिनों में राजा के निकल जाने की खबर राज-भर में फैल गई, राजा निकल गए, चारों तरफ यही खबर थी । "

और उस दिन टोले-मुहल्ले के हर आंगन में बरसात के मेह की तरह यह खबर बरसकर फैल गई कि चन्दा के बाल-बच्चा होने वाला है।

नुक्कड पर जमुना सुनार की कोठरी में फिंकती सुरही रुक गई। मुंशीजी ने अपना मीजान लगाना छोड विस्फारित नेत्रों से ताककर खबर सुनी। बंसी किरानेवाले ने कुएं में से आधी गईं रस्सीं खींच, डोल मन पर पटककर सुना। सुदर्शन दर्जी ने मशीन के पहिए को हथेली से रगडकर रोककर सुना। हंसराज पंजाबी ने अपनी नील-लगी मलगुजी कमीज की आस्तीनें चढाते हुए सुना। और जगपती की बेवा चाची ने औरतों के जमघट में बडे विश्वास, पर भेद-भरे स्वर में सुनाया - "आज छः साल हो गए शादी को न बाल, न बच्चा, न जाने किसका पाप है उसके पेट में। और किसका होगा सिवा उस मुसटण्डे कम्पोटर के! न जाने कहां से कुलच्छनी इस मुहल्ले में आ गई! इस गली की तो पुश्तों से ऐसी मरजाद रही है कि गैर-मर्द औरत की परछाई तब नहीं देख पाए। यहां के मर्द तो बस अपने घर की औरतों को जानते हैं, उन्हें तो पडोसी के घर की जनानियों की गिनती तक नहीं मालूम।" यह कहते-कहते उनका चेहरा तमतमा आया और सब औरतें देवलोक की देवियां की तरह गम्भीर बनीं, अपनी पवित्रता की महानता के बोझ से दबी धीरे-धीरे खिसक गई।

सुबह यह खबर फैलने से पहले जगपती टाल पर चला गया था। पर सुनी उसने भी आज ही थी। दिन-भर वह तख्त पर कोने की ओर मुंह किए पडा रहा। न ठेके की लकडियां चिराई, न बिक्री की ओर ध्यान दिया, न दोपहर का खाना खाने ही घर गया। जब रात अच्छी तरह फैल गई, वह हिंसक पशु की भांति उठा। उसने अपनी अंगुलियां चटकाई, मुठ्ठी बांधकर बांह का जोर देखा, तो नसें तनीं और बाह में कठोर कम्पन-सा हुआ। उसने तीन-चार पूरी सांसें खींचीं और मजबूत कदमों से घर की ओर चल पडा। मैदान खत्म हुआ, कंकड क़ी सडक आई,सडक खत्म हुई, गली आई। पर

गली के अन्धेरे में घुसते वह सहम गया, जैसे किसी ने अदृश्य हाथों से उसे पकडकर सारा रक्त निचोड लिया, उसकी फटी हुई शक्ति की नस पर हिम-शीतल होंठ रखकर सारा रस चूस लिया। और गली के अंधेरे की हिकारत-भरी कालिख और भी भारी हो गई, जिसमें घुसने से उसकी सांस रुक जाएगी,घुट जाएगी।

वह पीछे मुडा, पर रुक गया। फिर कुछ संयत होकर वह चोरों की तरह निःशब्द कदमों से किसी तरह घर की भीतरी देहरी तक पहुंच गया।

दाईं ओर की रसोईवाली दहलीज में कुप्पी टिमटिमा रही थीं और चन्दा अस्त-व्यस्त-सी दीवार से सिर टेके शायद आसमान निहारते-निहारते सो गई थी। कुप्पी का प्रकाश उसके आधे चेहरे को उजागर किए था और आधा चेहरा गहन कालिमा में डूबा अदृश्य था। वह खामोशी से खडा ताकता रहा। चन्दा के चेहरे पर नारीत्व की प्रौढता आज उसे दिखाई दी। चेहरे की सारी कमनीयता न जाने कहां खो गई थी, उसका अछूतापन न जाने कहां लुप्त हो गया था। फूला-फूला मुख। जैसे टहनी से तोडे फ़ूल को पानी में डालकर ताजा किया गया हो, जिसकी पंखुरियों में टूटन की सुरमई रेखाएं पड ग़ई हों, पर भीगने से भारीपन आ गया हो। उसके खुले पैर पर उसकी निगाह पडी, तो सूजा-सा लगा। एडियां भरी, सूजी-सी और नाखूनों के पास अजब-सा सूखापन। जगपती का दिल एक बार मसोस उठा। उसने चाहा कि बढकर उसे उठा ले। अपने हाथों से उसका पूरा शरीर छू-छूकर सारा कलुष पोंछ दे, उसे अपनी सांसों की अग्नि में तपाकर एक बार फिर पवित्र कर ले, और उसकी आंखों की गहराई में झांककर कहे- देवलोक से किस शापवश निर्वासित हो तुम इधर आ गई, चन्दा? यह शाप तो अमिट था।

तभी चन्दा ने हडबडाकर आंखें खोलीं। जगपती को सामने देख उसे लगा कि वह एकदम नंगी हो गई हो। अतिशय लज्जित हो उसने अपने पैर समेट लिए। घुटनों से धोती नीचे सरकाई और बहुत संयत-सी उठकर रसोई के अंधेरे में खो गई। जगपती एकदम हताश हो, वहीं कमरे की देहरी पर चौखट से सिर टिका बैठ गया। नजर कमरे में गई, तो लगा कि पराए स्वर यहां गूंज रहे हैं, जिनमें चन्दा का भी एक है। एक तरफ घर के हर कोने से, अन्धेरा सैलाब की तरह बढता आ रहा था।एक अजीब निस्तब्धता,असमंजस। गति, पर पथभ्रष्ट! शक्लें, पर आकारहीन।

"खाना खा लेते," चन्दा का स्वर कानों में पडा। वह अनजाने ऐसे उठ बैठा, जैसे तैयार बैठा हो। उसकी बात की आज तक उसने अवज्ञा न की थी। खाने तो बैठ गया, पर कौर

नीचे नहीं सरक रहा था। तभी चन्दा ने बडे सधे शब्दों में कहा, "कल मैं गांव जाना चाहती हूं।"

जैसे वह इस सूचना से परिचित था, बोला, "अच्छा।"

चन्दा फिर बोली, "मैंने बहुत पहले घर चिठ्ठी डाल दी थी, भैया कल लेने आ रहे हैं।"

"तो ठीक है।" जगपती वैसे ही डूबा-डूबा बोला।

चन्दा का बांध टूट गया और वह वहीं घुटनों में मुंह दबाकर कातर-सी फफक-फफककर रो पडी। न उठ सकी, न हिल सकी।

जगपती क्षण-भर को विचलित हुआ, पर जैसे जम जाने के लिए। उसके ओठ फडक़े और क्रोध के ज्वालामुखी को जबरन दबाते हुए भी वह फूट पडा, "यह सब मुझे क्या दिखा रही है? बेशर्म! बेगैरत! उस वक्त नहीं सोचा था, जब..ज़ब..मेरी लाश तले.."

"तब.. तब क़ी बात झूठ है । ", सिसकियों के बीच चन्दा का स्वर फूटा, "लेकिन जब तुमने मुझे बेच दिया..."

एक भरपूर हाथ चन्दा की कनपटी पर आग सुलगाता पडा। और जगपती अपनी हथेली दूसरी से दबाता, खाना छोड क़ोठरी में घुस गया और रात-भर कुण्डी चढाए उसी कालिख में घुटता रहा। दूसरे दिन चन्दा घर छोड अपने गांव चली गई।

जगपती पूरा दिन और रात टाल पर ही काट देता, उसी बीराने में, तालाब के बगल, कब्र, बबूल और ताड क़े पडोंस में। पर मन मुर्दा हो गया था। जबरदस्ती वह अपने को वहीं रोके रहता। उसका दिल होता, कहीं निकल जाए। पर ऐसी कमजोरी उसके तन और मन को खोखला कर गई थी कि चाहने पर भी वह जा न पाता। हिकारत-भरी नजरें सहता, पर वहीं पडा रहता। काफी दिनों बाद जब नहीं रह गया, तो एक दिन जगपती घर पर ताला लगा, नजदीक के गांव में लकडी कटाने चला गया। उसे लग रहा था कि अब वह पंगु हो गया है, बिलकुल लंगडा, एक रेंगता कीडा, जिसके न आंख है, न कान, न मन, न इच्छा। वह उस बाग में पहुंच गया, जहां खरीदे पेड कटने थे। दो आरेवालों ने पतले पेड क़े तने पर आरा रखा और कर्र-कर्र का अबाध शोर शुरू हो गया। दूसरे पेड पर बन्ने और शकूरे की कुल्हाडी बज उठी। और गांव से दूर उस बाग में एक लयपूर्ण शोर शुरू हो गया। जड पर कुल्हाडी पडती तो पूरा पेड थर्रा जाता।

करीब के खेत की मेड पर बैठे जगपती का शरीर भी जैसे कांप-कांप उठता। चन्दा ने कहा था, "लेकिन जब तुमने मुझे बेच दिया" क्या वह ठीक कहती थी! क्या बचनसिंह ने टाल के लिए जो रूपए दिए थे, उसका ब्याज इधर चुकता हुआ? क्या सिर्फ वही रूपए आग बन गए, जिसकी आंच में उसकी सहनशीलता, विश्वास और आदर्श मोम-से पिघल गए?

"शक़ूरे!" बाग से लगे दडे पर से किसी ने आवाज लगाई। शकूरे ने कुल्हाडी रोककर वहीं से हांक लगाई, "कोने के खेत से लीक बनी है, जरा मेड मारकर नंघा ला गाडी।"

जगपती का ध्यान भंग हुआ। उसने मुडकर दडे पर आंखें गडाईं। दो भैंसा-गाडियां लकडी भरने के लिए आ पहुंची थीं। शकूरे ने जगपती के पास आकर कहा, "एक गाडी का भुर्त तो हो गया, बल्कि डेढ क़ा,अब इस पतरिया पेड क़ो न छांट दें?"

जगपती ने उस पेड क़ी ओर देखा, जिसे काटने के लिए शकूरे ने इशारा किया था। पेड क़ी शाख हरी पत्तियों से भरी थी। वह बोला, "अरे, यह तो हरा है अभी इसे छोड दो।"

"हरा होने से क्या, उखट तो गया है। न फूल का, न फल का। अब कौन इसमें फल-फूल आएंगे, चार दिन में पत्ती झुरा जाएंगी।" शकूरे ने पेड क़ी ओर देखते हुए उस्तादी अन्दाज से कहा।

"जैसा ठीक समझो तुम," जगपती ने कहा, और उठकर मेड-मेड पक्के कुएं पर पानी पीने चला गया।

दोपहर ढलते गाडियां भरकर तैयार हुईं और शहर की ओर रवाना हो गईं। जगपती को उनके साथ आना पडा। गाडियां लकडी से लदीं शहर की ओर चली जा रही थीं और जगपती गर्दन झुकाए कच्ची सडक की धूल में डूबा, भारी कदमों से धीरे-धीरे उन्हीं की बजती घण्टियों के साथ निर्जीव-सा बढता जा रहा था

"कई बरस बाद राजा परदेस से बहुत-सा धन कमाकर गाडी में लादकर अपने देश की ओर लौटे, "मां सुनाया करती थीं," राजा की गाडी का पहिया महल से कुछ दूर पतेल की झाडी में उलझ गया। हर तरह कोशिश की, पर पहिया न निकला। तब एक पण्डित ने बताया कि सकट के दिन का जन्मा बालक अगर अपने घर की सुपारी लाकर इसमें छुआ दे, तो पहिया निकल जाएगा। वहीं दो बालक खेल रहे थे। उन्होंने यह सुना तो कूदकर पहुँचे और कहने लगे कि हमारी पैदाइश सकट की है, पर सुपारी तब लाएंगे, जब तुम आधा धन देने का वादा करो। राजा ने बात मान ली। बालक दौडे-दौडे घर

गए। सुपारी लाकर छुआ दी, फिर घर का रास्ता बताते आगे-आगे चले। आखिर गाडी महल के सामने उन्होंने रोक ली।

राजा को बडा अचरज हुआ कि हमारे ही महल में ये दो बालक कहां से आ गए? भीतर पहुँचे, तो रानी खुशी से बेहाल हो गई।

"पर राजा ने पहले उन बालकों के बारे में पूछा, तो रानी ने कहा कि ये दोनों बालक उन्हीं के राजकुमार हैं। राजा को विश्वास नहीं हुआ। रानी बहुत दुखी हुई।"

गाडियां जब टाल पर आकर लगीं और जगपती तखत पर हाथ-पैर ढीले करके बैठ गया, तो पगडण्डी से गुजरते मुंशीजी ने उसके पास आकर बताया, अभी उस दिन वसूली में तुम्हारी ससुराल के नजदीक एक गांव में जाना हुआ, तो पता लगा कि पन्द्रह-बीस दिन हुए, चन्दा के लडक़ा हुआ है।" और फिर जैसे मुहल्ले में सुनी-सुनाई बातों पर पर्दा डालते हुए बोले, "भगवान के राज में देर है, अंधेर नहीं, जगपती भैया!"

जगपती ने सुना तो पहले उसने गहरी नजरों से मुंशीजी को ताका, पर वह उनके तीर का निशाना ठीक-ठीक नहीं खोज पाया। पर सब कुछ सहन करते हुए बोला, "देर और अंधेर दोनों हैं!"

"अंधेर तो सरासर है,तिरिया चरित्तर है सब! बडे-बडे हार गए हैं," कहते-कहते मुंशीजी रुक गए, पर कुछ इस तरह, जैसे कोई बडी भेद-भरी बात है, जिसे उनकी गोल होती हुई आंखें समझा देंगी। जगपती मुंशीजी की तरफ ताकता रह गया। मिनट-भर मनहूस-सा मौन छाया रहा, उसे तोडते हुए मुंशीजी बडी दर्द-भरी आवाज में बोले, "सुन तो लिया होगा, तुमने?"

"क्या?" कहने को जगपती कह गया, पर उसे लगा कि अभी मुंशीजी उस गांव में फैली बातों को ही बडी बेदर्दी से कह डालेंगे, उसने नाहक पूछा।

तभी मुंशीजी ने उसकी नाक के पास मुंह ले जाते हुए कहा, "चन्दा दूसरे के घर बैठ रही है,क़ोई मदसूदन है वहीं का। पर बच्चा दीवार बन गया है। चाहते तो वो यही हैं कि मर जाए तो रास्ता खुले, पर रामजी की मर्जी। सुना है, बच्चा रहते भी वह चन्दा को बैठाने को तैयार है।"

जगपती की सांस गले में अटककर रह गई। बस, आंखें मुंशीजी के चेहरे पर पथराई-सी जडी थीं।

मुंशीजी बोले, "अदालत से बच्चा तुम्हें मिल सकता है। अब काहे का शरम-लिहाज!"

"अपना कहकर किस मुंह से मांगूं, बाबा? हर तरफ तो कर्ज से दबा हूं, तन से, मन से, पैसे से, इज्जत से, किसके बल पर दुनिया संजोने की कोशिश करूं?" कहते-कहते वह अपने में खो गया।

मुंशीजी वहीं बैठ गए। जब रात झुक आई तो जगपती के साथ ही मुंशीजी भी उठे। उसके कन्धे पर हाथ रखे वे उसे गली तक लाए। अपनी कोठरी आने पर पीठ सहलाकर उन्होंने उसे छोड दिया। वह गर्दन झुकाए गली के अंधेरे में उन्हीं ख्यालों में डूबा ऐसे चलता चला आया, जैसे कुछ हुआ ही न हो। पर कुछ ऐसा बोझ था, जो न सोचने देता था और न समझने। जब चाची की बैठक के पास से गुजरने लगा, तो सहसा उसके कानों में भनक पडी - "आ गए सत्यानासी! कुलबोरन!"

उसने जरा नजर उठाकर देखा, तो गली की चाची-भौजाइयां बैठक में जमा थीं और चन्दा की चर्चा छिडी थी। पर वह चुपचाप निकल गया।

इतने दिनों बाद ताला खोला और बरोठे के अंधेरे में कुछ सूझ न पडा, तो एकाएक वह रात उसकी आंखों के सामने घूम गई, जब वह अस्पताल से चन्दा के साथ लौटा था। बेवा चाची का वह जहर-बुझ तीर, "आ गए राजा निरबंसिया अस्पताल से।" और आज "सत्यानासी! कुलबोरन!" और स्वयं उसका वह वाक्य, जो चन्दा को छेद गया था, "तुम्हारे कभी कुछ न होगा।" और उस रात की शिशु चन्दा!

चन्दा का लडक़ा हुआ है। वह कुछ और जनती, आदमी का बच्चा न जनती। वह और कुछ भी जनती, कंकड-पत्थर! वह नारी न बनती, बच्ची ही बनी रहती, उस रात की शिशु चन्दा। पर चन्दा यह सब क्या करने जा रही है? उसके जीते-जी वह दूसरे के घर बैठने जा रही है? कितने बडे पाप में धकेल दिया चन्दा को पर उसे भी तो कुछ सोचना चाहिए। आखिर क्या? पर मेरे जीते-जी तो यह सब अच्छा नहीं। वह इतनी घृणा बर्दाश्त करके भी जीने को तैयार है, या मुझे जलाने को। वह मुझे नीच समझती है, कायर,नहीं तो एक बार खबर तो लेती। बच्चा हुआ तो पता लगता। पर नहीं, वह उसका कौन है? कोई भी नहीं। औलाद ही तो वह स्नेह की धुरी है, जो आदमी-औरत के पहियों को साधकर तन के दलदल से पार ले जाती है नहीं तो हर औरत वेश्या है और हर आदमी वासना का कीडा। तो क्या चन्दा औरत नहीं रही? वह जरूर औरत थी, पर स्वयं मैंने उसे नरक में डाल दिया। वह बच्चा मेरा कोई नहीं, पर चन्दा तो मेरी है। एक बार उसे ले आता, फिर यहां रात के मोहक अंधेरे में उसके फूल-से अधरों को

देखता,निर्द्वन्द्व सोई पलकों को निहारता,साँसों की दूध-सी अछूती महक को समेट लेता।

आज का अंधेरा! घर में तेल भी नहीं जो दीया जला ले। और फिर किसके लिए कौन जलाए? चन्दा के लिए पर उसे तो बेच दिया था। सिवा चन्दा के कौन-सी सम्पत्ति उसके पास थी, जिसके आधार पर कोई कर्ज देता? कर्ज न मिलता तो यह सब कैसे चलता? काम पेड कहां से कटते? और तब शकूरे के वे शब्द उसके कानों में गूंज गए, "हरा होने से क्या, उखट तो गया है। " वह स्वयं भी तो एक उखटा हुआ पेड है, न फल का, न फूल का, सब व्यर्थ ही तो है। जो कुछ सोचा, उस पर कभी विश्वास न कर पाया। चन्दा को चाहता रहा, पर उसके दिल में चाहत न जगा पाया। उसे कहीं से एक पैसा मांगने पर डांटता रहा, पर खुद लेता रहा और आज वह दूसरे के घर बैठ रही है उसे छोडकर वह अकेला है, हर तरफ बोझ है, जिसमें उसकी नस-नस कुचली जा रही हैं, रग-रग फट गई है। और वह किसी तरह टटोल-टटोलकर भीतर घर में पहुंचा।

"रानी अपने कुल-देवता के मन्दिर में पहुंचीं," मां सुनाया करती थीं, "अपने सतीत्व को सिध्द करने के लिए उन्होंने घोर तपस्या की। राजा देखते रहे। कुल-देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवी शक्ति से दोनों बालकों को तत्काल जन्मे शिशुओं में बदल दिया। रानी की छातियों में दूध भर आया और उनमें से धार फूट पडी, ज़ो शिशुओं के मुंह में गिरने लगी। राजा को रानी के सतीत्व का सबूत मिल गया। उन्होंने रानी के चरण पकड लिए और कहा कि तुम देवी हो! ये मेरे पुत्र हैं! और उस दिन से राजा ने फिर से राज-काज संभाल लिया। "

पर उसी रात जगपती अपना सारा कारोबार त्याग, अफीम और तेल पीकर मर गया क्योंकि चन्दा के पास कोई दैवी शक्ति नहीं थी और जगपती राजा नहीं, बचनसिंह कम्पाउण्डर का कर्जदार था।

"राजा ने दो बातें कीं," मां सुनाती थीं, "एक तो रानी के नाम से उन्होंने बहुत बडा मन्दिर बनवाया और दूसरे, राज के नए सिक्कों पर बडे राजकुमार का नाम खुदवाकर चालू किया, जिससे राज-भर में अपने उत्तराधिकारी की खबर हो जाए । "

जगपती ने मरते वक्त दो परचे छोडे, एक चन्दा के नाम, दूसरा कानून के नाम।

चन्दा को उसने लिखा था, "चन्दा, मेरी अन्तिम चाह यही है कि तुम बच्चे को लेकर चली आना।अभी एक-दो दिन मेरी लाश की दुर्गति होगी, तब तक तुम आ सकोगी।

चन्दा, आदमी को पाप नहीं, पश्चाताप मारता है, मैं बहुत पहले मर चुका था। बच्चे को लेकर जरूर चली आना।"

कानून को उसने लिखा था, "किसी ने मुझे मारा नहीं है,क़िसी आदमी ने नहीं। मैं जानता हूं कि मेरे जहर की पहचान करने के लिए मेरा सीना चीरा जाएगा। उसमें जहर है। मैंने अफीम नहीं, रूपए खाए हैं। उन रूपयों में कर्ज क़ा जहर था, उसी ने मुझे मारा है। मेरी लाश तब तक न जलाई जाए, जब तक चन्दा बच्चे को लेकर न आ जाए। आग बच्चे से दिलवाई जाए। बस।"

मां जब कहानी समाप्त करती थीं, तो आसपास बैठे बच्चे फूल चढाते थे।

मेरी कहानी भी खत्म हो गई, पर.....